विक्रम संवत-२०३५, अषाढ़ शुक्ल-१, सोमवार, तारीख ११-८-१९८०
वचनामृत-३२, ३३, ३४, ३६ प्रवचन-४

सम्यग्दृष्टि को आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता, जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है, उसको बाह्य विषयों का रस टूट गया है, कोई पदार्थ सुन्दर या अच्छा नहीं लगता। अनादि अभ्यास के कारण, अस्थिरता के कारण अन्दर स्वरूप में नहीं रहा जा सकता, इसलिए उपयोग बाहर आता है परन्तु रस के बिना — सब निःसार, छिलकों के समान, रस-कस शून्य हो, ऐसे भाव से-बाहर खड़े हैं॥ ३२॥

३२। **सम्यग्दृष्टि को आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता,...** आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय, अतीन्द्रिय शान्तमय, शान्तरस स्वभाव ऐसे स्वरूप का जिसको अनुभव हुआ, उसको सम्यग्दृष्टि कहते हैं। अन्तर में राग से भिन्न, पुण्य से भिन्न अपनी दृष्टि त्रिकाली ज्ञायक पर हो, उसको यहाँ अनुभव में आत्मा का स्वाद आता है। उसको यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! क्योंकि अनन्त काल से राग और द्वेष की आकुलता का वेदन किया है। अनन्त-अनन्त काल में मनुष्य दिगम्बर साधु हुआ तो भी राग की आकुलता का वेदन किया है। राग से भिन्न अनाकुल प्रभु, उसकी उसको खबर नहीं है। सम्यग्दृष्टि (अर्थात्) सत्य जैसी वस्तु परमपारिणामिकस्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द उसका सम्यक् अर्थात् है, ऐसी (वस्तु) है, ऐसी दृष्टि, ऐसा अनुभव (हुआ है)। आहाहा!

ऐसे सम्यग्दृष्टि को आत्मा के सिवा। अपने अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के आगे, **आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता,...** बाहर कुछ अच्छा नहीं लगता। आहा! जहाँ अपना स्वरूप... ३१वीं गाथा में कहा है, '**जो इंदिये जिणित्ता**' अर्थात् द्रव्यइन्द्रिय-यह जड़, भावइन्द्रिय-अन्दर एक-एक को विषय करनेवाली इन्द्रिय और पूरी दुनिया।

उसमें भगवान और भगवान की वाणी भी आ गई। सब इन्द्रिय है। '**जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं**'। दुनिया से भिन्न होकर। अपना ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव सबसे भिन्न। '**णाणसहावाधियं**' अधिक। भगवान तीर्थंकरदेव की ओर लक्ष्य करने से भी भगवान ज्ञानस्वभाव अधिक आनंदस्वभाव (है)। क्योंकि परद्रव्य में लक्ष्य करने से तो राग होता है। आहाहा! अपनी चीज़ में आनन्द भरा है। उस ओर के झुकाव से, उसकी मिठास में आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता।

समकिती को चक्रवर्ती का राज है, अन्तर में अच्छा नहीं लगता। इन्द्र का इन्द्रासन है। शक्रेन्द्र को बत्तीस लाख विमान है। शक्रेन्द्र एकावतारी है, एक भव करके मोक्ष जानेवाला है। करोड़ा अप्सराएँ हैं। रस नहीं है, आत्मा के सिवा रस नहीं है। आहाहा! अतीनिद्रय आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु अन्तर में से जागृत हुआ और उसका स्वाद आया और उसमें ऋद्धि-सम्पदा, जगत की विपदा से विरुद्ध सम्पदा-आनन्द की सम्पदा आत्मा में भरी है। आहाहा! उसकी जिसको लगनी लगी, उसे बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता। बाहर कहीं अच्छा नहीं (लगता)। आहा..! शुभराग भी जहाँ अच्छा नहीं लगता। क्योंकि वह भी आकुलता है। आनन्द और अनाकुल आत्मा के समक्ष राग, तीर्थंकर गोत्र बाँधने का राग भी आकुलता-दुःख है। इसलिए कहीं अच्छा नहीं लगता। आहाहा!

जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। आत्मा के समक्ष **जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती।** स्वर्ग सर्वार्थसिद्धि का देव।

रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की,
सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो।

एक रजकण से लेकर सर्वार्थसिद्ध के देव की गति। 'रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की, सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो।' सब पुद्गल का स्वभाव है। रजकण या सर्वार्थसिद्ध का अवतार। आहाहा! यह श्रीमद् का वाक्य है। वह कुछ सुन्दर नहीं लगता।

जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है,... आहाहा! जिसको चैतन्य भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का रस लगा है.. आहाहा! **उसको बाह्य विषयों का रस टूट गया है,...** एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। जिसको आत्मा के अतिरिक्त रागादि, पुण्य आदि

में रस है, उसको आत्मा का रस नहीं है। और जिसको आत्मा का रस है, उसको पुण्यादि परिणाम और उसके फल की भी इच्छा नहीं है। रुचि नहीं है, रस नहीं है। आहाहा! गजब बात है! एक ओर आत्मा और एक ओर पूरी दुनिया। परन्तु उस आत्मा के रस के समक्ष पूरी दुनिया में कुछ अधिकता मालूम नहीं पड़ती। '**णाणसहावाधियं मुणदि**' ३१ गाथा में कहा। वहाँ तो भगवान की वाणी और भगवान को इन्द्रिय कहा है। ३१ गाथा। तीन लोक के नाथ और उनकी वाणी भी परद्रव्य है। आहाहा! अपने स्वद्रव्य के आनन्द के समक्ष उसको परद्रव्य में कहीं रस नहीं आता। आहा..!

जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है, उसको बाह्य विषयों का रस टूट गया है,... ओहोहो! चक्रवर्ती क्षायिक समकिती था। ९६ हजार स्त्रियाँ थीं, उसका भोग भी था। परन्तु अन्तर में से उसका रस नहीं था। आहाहा! स्वामीत्व नहीं, रस नहीं। अन्तर की रुचि का रस निकल गया। क्यों? कि रुचि अनुयायी वीर्य। जिसकी अन्तर रुचि हो, उस ओर वीर्य झुके। समझ में आया? रुचि अनुयायी वीर्य। जिस ओर रुचि हो, उस ओर वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ झुके। रुचि अनुयायी वीर्य। जिसकी अन्दर में जरूरत भासित हुई, दुनिया की कोई चीज, एक भगवान आत्मा के सिवा, उसकी जरूरत ज्ञात हुई, उसका वीर्य अन्दर में झुके बिना रहे नहीं। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। **बाह्य विषयों का रस टूट गया है, कोई पदार्थ सुन्दर या अच्छा नहीं लगता।** ओहोहो! सर्वार्थसिद्ध का देव हो, वह भी सुन्दर नहीं लगता। आहाहा! भगवान आनन्द के समक्ष.. सम्यग्दर्शन कोई ऐसी चीज़ है, प्रभु!.. आहाहा! जिसको अन्दर में यह वेदन प्रगट हो, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हो, उस वेदन के समक्ष सारी दुनिया तुच्छ लगे। आहाहा! अच्छा नहीं लगता।

अनादि अभ्यास के कारण,... अब क्या कहते हैं? उसको राग तो होता है। समकिती को आसक्ति तो होती है। तो कहते हैं, **अनादि अभ्यास के कारण, अस्थिरता के कारण अन्दर स्वरूप में नहीं रहा जा सकता,...** स्वरूप में रह सकता नहीं। आहाहा! अन्तर आनन्द में जब रह नहीं सके, अपनी पर्याय की कमजोरी से, तब **उपयोग बाहर आता है...** समकिती का उपयोग बाहर आता है। आहाहा! बाहुबलीजी और भरत, दोनों भाई और समकिती (हैं)। लड़ाई (हुई)। वह अस्थिरता का भाग है, भाई! बाहर से नाप करने जाएगा तो मेल नहीं खायेगा। यह अस्थिरता का भाग है। अन्तर सम्यग्दर्शन-दृष्टि

द्रव्य पर पड़ी है। दृष्टि ने द्रव्य का स्वीकार किया है, उसके समक्ष किसी भी चीज़ का स्वीकार होता नहीं। आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं। परन्तु कमजोरी से, जब तक वीतरागता न हो, तब तक आसक्ति आती है। इसलिए **उपयोग बाहर आता है परन्तु रस के बिना...** आहाहा! एक आदमी था। उसे ऐसी आदत हो गई थी कि रोज उसे हलवा खाने में चाहिए। रोज हलवा खाये। रोटी आदि बिल्कुल नहीं। उसका एक ही लड़का था, वह मर गया। जलाने गये। जलाकर वापस आते हैं। रोटी करो। रिश्तेदार इकट्ठे होते हैं। अभी जामनगर में बना। जामनगर। रोटी करो। भाई! आपको रोटी हजम नहीं होगी। आपको हलवा खाना हो तुमको रोटी ... क्योंकि उसने हलवा ही (खाया था)। हलवा की खुराक। रिश्तेदार ने हलवा बनाया। इसने ऐसा कहा कि, रोटी बनाओ, बापू! अरे.. ! लड़का गया। बनाया। थाली में डाला, परन्तु आँख में से आँसू की धारा चलती है और हलवा खाता है। समझ में आया? विसाश्रीमाली। जामनगर का कोई जानता है? कोई जामनगर का नहीं है? वसा.. वसा। आहाहा! वर्षों से सिर्फ हलवा ही खाया था। उसे हलवा दिया। रोटी आदि कुछ खाये तो तुरन्त रोग हो जाए, मर जाए। वह खाने बैठा, परन्तु खाते समय आँख में से आँसू की धारा (बहती है), रस नहीं है।

वैसे समकिती को... आहाहा! बाहर की कोई चीज़ का रस नहीं है। जैसे एक पुत्र मर गया और अपना खुराक ही हलवा था, परन्तु उसे खाते समय आँख में से आँसू.. आँसू.. आँसू। ऐसे समकिती को उपयोग बाहर आता है, अन्तर में जा सकता नहीं। दृष्टि ध्रुव पर पड़ी है। ध्रुव का अवलम्बन अन्दर से लिया है, वहाँ आनन्द है। परन्तु विशेष उपयोग अन्दर नहीं जाता है, उपयोग बाहर रहता है, तब.. वह कहते हैं?

पयोग बाहर आता है परन्तु रस के बिना... रस नहीं है, रस नहीं है। रस उड़ गया। आहाहा! एक वृद्ध आदमी था। हलवा खाया। पुत्र को जलाकर आये। रिश्तेदार इकट्ठे होकर कहते हैं, भाई! तुम मर जाओगे, यह रोटी खाओगे तो। आपने कभी खाया नहीं। वैसे यहाँ समकिती को आत्मा का भोजन मिला.. आहाहा! सम्यग्दृष्टि को आत्मा के आनन्द का भोजन मिला, उसके आगे दूसरी चीज़ का रस छूट जाता है। आहाहा! ऐसी चीज़ है, प्रभु! आहा.. ! प्रभु की प्रभुता जहाँ अन्दर में भासित हुई.. भगवान प्रभु है, वह प्रभुता जहाँ

अन्तर में भासित हुई, वहाँ आत्मा के रस के आगे, उसके सिवा जगत का सब रस छूट जाता है। आहाहा! धर्म कोई ऐसी चीज़ नहीं कि बाहर से छोड़ दिया, इसलिए धर्म हो गया। आहाहा! अन्दर से पुण्य का राग आता है, उसका भी जिसको रस नहीं। आहा..! ऐसी बात है, प्रभु! मूल बात यह है। आहाहा! पुण्य का भाव आये, फिर भी उसमें रस नहीं है। पुण्य से भिन्न भगवान आत्मा का रस छूटता नहीं। दृष्टि का ध्येय ध्रुव है, दृष्टि ध्रुव पर जम गई है। आहाहा! करनेयोग्य हो तो यह है। दृष्टि ध्रुव पर जम गई। आहाहा! उसके रस के समक्ष बाकी सब रस फीका लगता है। कैसे? क्या?

सब निःसार, छिलकों के समान,... छिलका-छिलका-फोतरा। आहाहा! भाई! शब्दों का काम नहीं है, वहाँ विद्वत्ता का काम नहीं है, वहाँ पण्डिताई का काम नहीं है। आहाहा! जहाँ आत्मा का रस आया, वहाँ छिलके के समान (लगता है)। पूरी दुनिया, चक्रवर्ती का राज या इन्द्र का इन्द्रासन आत्मा के रस के समक्ष छिलके के समान सब लगता है। आहाहा! है?

रस-कस शून्य हो ऐसे... सब पर में से रस और कस उड़ गया। जैसे खाली बक्सा हो, दिखे। कोठा भले दिखे। पूरा कोठा खाये। हमने तो प्रत्यक्ष देखा है। हमारे वहाँ उमराला में कोठा बहुत (होता था)। हाथी आये। वह पूरा कोठा खाये और पूरा निकले। खाये पूरा, पूरा निकले। अन्दर से रस उड़ गया है। ना जाने कैसे बनता है। ऊपर का दिखाव उतना का उतना। और अन्दर का रस सब उड़ गया हो। प्रत्यक्ष देखा है। आहाहा! समझ में आया? नहीं आया? कोठा नहीं समझे? हाथी कोठा खाता है। उसका भजन भी है। हाथी कोठा खाता है, इतना गोल होता है। परन्तु वैसा का वैसा पूरा निकले। अन्दर का जो रस था वह सब समाप्त हो गया। हमने तो प्रत्यक्ष देखा है। हमारे वहाँ उमराला में हाथी बहुत आते थे। नदी में बैठे हो। देखा था। खाली होता है। दस-बीस कोठा होता है। अन्दर का रस उड़ गया। तोल उड़ गया, तोल। तोल को क्या कहते हैं? वजन। वजन उड़ गया अन्दर से और खोखा बच गया। आहाहा!

ऐसे समकिती को... आहा..! कोठा में से जैसे रस ले लिया और खाली कोठा रहा.. यह तो प्रत्यक्ष देखा है, उसकी बात है, प्रभु! कोठा का बड़ा वृक्ष होता है। उमराला में (थे)। आहाहा! इस आत्मा के आनन्द के रस के आगे, जैसे कोठा का रस पूरा चूस लेता

है, फिर भी दिखाव पूरा लगता है, वैसे समकिती पुरुष संसार में दिखाई दे। समकिती इन्द्र के इन्द्रासन में दिखाई दे, समकिती चक्रवर्ती के राज में दिखाई दे, ९६ हजार स्त्री के विषय के भोग में दिखाई दे, फिर भी उसका उसमें रस नहीं है। आहाहा! बापू! वह क्या चीज़ है? मूल चीज़ तो यह है, बाकी सब बातें हैं।

आत्मा अन्दर सच्चिदानन्दस्वरूप, उसका जिसको ज्ञान और आनन्द का स्वाद आया, वह छिलका समान सारी दुनिया लगती है। आहाहा! **छिलकों के समान, रस-कस...** रस और कस। अन्दर कस है, वह खत्म हो जाता है। **ऐसे भाव से-बाहर खड़े हैं।** आहाहा! मूल वस्तु से दूर नहीं है, परन्तु दृष्टि तो वहीं लगी है। परन्तु बाहर में ऐसा उपयोग लगा है तो वहाँ खड़ा है, ऐसा दिखता है, परन्तु अन्दर में नहीं है। आहाहा! अन्दर में तो राग से भी भिन्न आत्मा का अनुभव तो उस समय भले साक्षात् न हो, परन्तु लब्धरूप में अनुभव में है। लब्धि तो है। आत्मा का भान हुआ, वह चाहे जो भी भोग में बैठा हो.. आहाहा! (लब्ध में आत्मानुभव चालू है)।

एक बात ऐसी है, भरतेश वैभव। भरतेश वैभव देखा है न? भरतेश वैभव पुस्तक है। यहाँ है। सब देखे हैं। यहाँ हजारों पुस्तक आते हैं। उसमें एक ऐसा लिखा है। उसका नाम क्या है? कर्ता कौन? रत्नाकर वर्णी। रत्नाकर वर्णी ने बनाया है। भरत का वैभव। आहाहा! उसमें ऐसा लिखा है कि अन्दर आत्मा के रस के समक्ष सब रस फीके हो जाते हैं। वह तो ठीक परन्तु उसमें दृष्टान्त दिया है। भरतेश वैभव है। क्या दृष्टान्त दिया है? चक्रवर्ती समकिती बाहर भोग में आया। ९६ हजार स्त्री है और क्षायिक समकित है। बाहर भोग में आया उपयोग में। आहाहा! तो वह भोगादि में दिखने में आया, परन्तु जब वह भोग से निवृत्त होकर नीचे बैठे तो ध्यान में निर्विकल्प हो गये। आहाहा! भरतेश वैभव है, भाई! चन्दुभाई! आपने देखा है? नहीं देखा होगा। अपने यहाँ है.. होशियार है, कोई रत्नाकर है, उसने बनाया है। उसके पाठ में ऐसा आता है। (पुस्तक) बनाया इसलिए हाथी के होदे पर उसका जुलूस निकाला था। भरतेश वैभव। आहाहा!

जिसे एक क्षण पहले उपयोग बाहर का था। परन्तु वह रस बिना का उपयोग था, प्रभु! रस जहाँ जमा था, वहाँ से उपयोग हट गया। परन्तु दूसरी क्षण में ध्यान में निर्विकल्प आनन्द के स्वाद में आ गये। आहाहा! त्याग नहीं है किसी का। ९६ हजार स्त्री। अन्तर्मुहूर्त

में नीचे बैठकर ध्यान में बैठ गये, वहाँ निर्विकल्प ध्यान हो गया। ध्याता, ध्यान और ध्येय भूल गये। आहाहा! रस उड़ जाता है। वह ३२ में कहा।

'जिसे लगी है उसी को लगी है' ....परन्तु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा। इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना। मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है, सन्तोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है, वह बाकी रह जाता है—ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है, इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता; और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिए उलझन तो होती है, परन्तु इधर-उधर न जाकर वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है॥ ३३॥

३३। **'जिसे लगी है उसी को लगी है'।** आहाहा! आत्मा की जिसे लगी है, उसी को लगी है। आहा..! **परन्तु अधिक खेद नहीं करना।** विशेष खेद नहीं करना, जबतक नहीं मिले तबतक। आनन्द का स्वाद जब तक नहीं आवे, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद जब तक नहीं आवे। **परन्तु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है,...** क्या कहते हैं? **कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे।** आहाहा! यह समकित होने से पहले की बात है। शुभाशुभ परिणाम होंगे, उलझन में नहीं आना। उससे हटकर आत्मा का प्रयोग करना। आहाहा! सूक्ष्म बात है। वस्तु होने पर भी अधिक खेद नहीं करना। एकदम निर्विकल्प हो जाऊँ, ऐसे जल्दबाजी से (काम) नहीं होता। वह तो सहज दशा है। सहज दशा। आहाहा! स्वभाविक दशा जहाँ उत्पन्न होती है, वहाँ हठ काम नहीं करती। आहाहा! उतावली नहीं करना, ऐसा कहते हैं। धैर्य रखना, धैर्य। आहाहा!

वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा। अन्तर में जा सके नहीं और शुभाशुभ छूट जाएगा तो शून्य हो जाएगा। समझ में आया? अन्तर में जा सके नहीं, अभी समकित हुआ नहीं और शुभाशुभ परिणाम छोड़ने जाएगा तो शून्य हो जाएगा। आहाहा!

यह तो बहिन की अनुभव-वाणी है। अन्तर अनुभव-अनुभूति आनन्द का स्वाद लेते-लेते यह वाणी निकल गई है। आहा..! आहाहा! शरीर कमजोर है, इसलिए आते नहीं। दोपहर को कभी-कभी आते हैं। शरीर कमजोर है, अन्दर में आनन्द है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अपने में **शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जाएगा...** आत्मानुभव होवे नहीं (और) शुभाशुभ छोड़ने जाएगा तो शुष्क हो जाएगा। शुभ परिणाम को छोड़ने जाएगा, शुद्ध अनुभव है नहीं, शुष्क हो जाएगा। आहाहा! अथवा शून्य हो जाएगा। कुछ पता नहीं लगेगा। यह तो अन्तर की बात है, बापू! अनुभव की बात है। आहाहा!

अनुभव रत्न चिंतामणि, अनुभव है रसकूप,
अनुभव मार्ग मोक्षनो, अनुभव मोक्षस्वरूप।

आहाहा! अनुभव सूक्ष्म वस्तु है, बापू! 'अनुभवीने अेटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे...' लगभग ८० साल पहले। अभी तो ९१ वर्ष हुए, शरीर को। ८० साल पहले हमारे पड़ोस में एक ब्राह्मण थे। मेरे मामा का मकान था। वह स्नान करके ऐसा बोले। लंगोटी पहनते हैं न? तब ऐसा बोले। 'अनुभवीने अेटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे, भजवा परिब्रह्म ने बीजुं कांई न कहेवुं..' वह समझते नहीं थे। उसे पूछा, मामा! आप क्या बोलते हो? उसने कहा, मैं कुछ समझता नहीं। सब बोलते हैं तो मैं भी बोलता हूँ। आहाहा! 'अनुभवीने अेटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे, भजवा परिब्रह्म...' आत्मा परिब्रह्म, उसका भजन कर। भक्ति दो प्रकार की है। समयसार में जयसेनाचार्य की टीका में दो प्रकार की भक्ति (कही है)। एक स्वभक्ति, एक परभक्ति। दो (बात) चली है। स्वभक्ति निर्विकल्प है। विकल्प का अवकाश नहीं है। आहाहा! और पर की भक्ति करने जाता है तो विकल्प आता है। आता है, अन्दर स्थिर न रह सके, अस्थिर है। यहाँ कहा न? अस्थिर है तो आयेगा।

इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना। आहाहा! धीमे से-धीरे से राग से हटने का प्रयत्न, धीरे से करना। बहुत जल्दबाजी करेगा तो अनुभव प्राप्त होगा नहीं और राग से दूर होगा नहीं। आहाहा! **मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है;...** क्या कहते हैं? मुमुक्षु जीव बाहर में उल्लसित दिखे। बाहर के काम में उल्लास जैसा दिखे। आहाहा! इन्द्र, शक्रेन्द्र एक भव में मोक्ष जानेवाला है। वह नन्दीश्वर द्वीप में जाता है। आठ-आठ

दिन। वह समकिती है, एक भव में मोक्ष जानेवाला है। वह घुंघरू बाँधकर नाचता है। आहा..! भगवान के पास। अन्दर में समझता है कि यह सब जड़ की क्रिया है। थोड़ा भाव है, वह शुभ है। ऐसा समझता है। और शुद्ध मेरी चीज दूसरी भिन्न है। आहाहा!

यह कहते हैं, **मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है;...** उल्लास दिखता है। घुंघरू बाँधकर नाचता है, है समकिती, क्षायिक समकित। आहाहा! मिथ्यादृष्टि अशुभराग छोड़कर शुभराग में लीन हो, फिर भी मिथ्यादृष्टि है। समकिती, समकित (स्वभाव) में से उपयोग हट गया, समकित वैसा ही रहा, उपयोग हटा तो शुभराग भी आया। अशुभराग-कृष्ण, नील, कापोत, लेश्या भी आयी, फिर भी उसकी दृष्टि ध्रुव पर है, वह हटती नहीं। आहाहा! समझ में आया? ध्रुव के ध्यान में जिसे लगी है,... आहाहा! उसे यह बाहर की सब चीज़ का रस छूट गया है। ऐसे ही मान ले कि हम धर्मी हैं। और अन्दर में कुछ नहीं। आहाहा! कठिन बात है।

मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है;... समकिती उल्लास से भक्ति आदि भी करते हैं न? भगवान की भक्ति आदि करे। शुभभाव आता है तो करते हैं। **साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है,...** अन्दर खटक (रहती है कि), अरे..! मैं तो आनन्द हूँ, यह नहीं। आहाहा! उस बात की खटक तो रहा ही करती है। आहाहा! **सन्तोष नहीं होता।** बाहर में कोई चीज़ में धर्मी को सन्तोष होता नहीं। मान, अपमान, इज्जत, कीर्ति सब धूल है। आहाहा! किसी पर जिसे रस नहीं है। आहाहा!

अभी मुझे जो करना है, वह बाकी रह जाता है... अन्दर में जाने का प्रयत्न करता है, प्रयत्न करते.. करते.. करते.. अन्दर में जाने का एक ही प्रयत्न है, इसलिए शुभ-अशुभ को छोड़ने की जल्दबाजी भी नहीं करता। क्योंकि एकदम शुभ छोड़ने जाए तो शुभ भी छूट जाएगा। अभी शुद्धता प्रगट नहीं हुई। चन्दुभाई! प्रथम भूमिका के लिये यह बहुत अच्छा है। **ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है,...** आहाहा! कल दृष्टान्त दिया था न? माँ का। माँ-बेटा होता है न। अँगुली पकड़कर जाता हो। दृष्टान्त दिया था न? लड़का हो, उसकी माँ की अँगुली पकड़कर चलता हो। उसमें अँगुली छूट गई और अकेला रह गया। उसकी माँ आगे चली गयी। उसे पुलिस उठाकर ले आयी। हमने देखा है। पोरबन्दर चातुर्मास था। उपाश्रय के पास ही वह हुआ। लड़की को ऐसा पूछते हैं, लड़की! तेरा नाम

क्या है ? मेरी माँ। उसे एक ही लगी थी, मेरी माँ, मेरी माँ, मेरी माँ। वैसे समकिती को मेरा प्रभु, मेरा प्रभु आत्मा लगा है। उसे कुछ भी पूछे, तेरी गली कौन-सी ? तेरी सहेली कौन ? कुछ कहे तो उसकी गली में छोड़ दे। लेकिन एक ही बात बोले, जो कुछ पूछे, मेरी माँ, मेरी माँ। ऐसे धर्मी को, मेरा नाथ आत्मा। आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु, उस पर से दृष्टि कभी हटती नहीं। बाह्य में उपयोग आये... आहाहा! बाह्य कार्य में जुड़ा हो, ऐसा दिखे, फिर भी बाहर का काम करता नहीं। समकिती बाह्य कोई भी काम, हाथ हिलाना, वह क्रिया आत्मा की नहीं। आहाहा! हाथ हिलाना, हाथा से पुस्तक बनाना, वह आत्मा की क्रिया नहीं। आहाहा!

वह तो तीसरी गाथा में आ गया न ? समयसार तीसरी गाथा। तीसरी गाथा में मूल पाठ है। प्रत्येक वस्तु अपने धर्म को चूमती है। अपने सिवा दूसरी चीज को चूमती नहीं। समयसार की तीसरी गाथा। मूल पाठ संस्कृत अमृतचन्द्राचार्य का है। बताया था न ? कल बताया था। दो बात है। एक तो यह कि, एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की दूसरी पर्याय को छूती नहीं। यह बात जैन में बहुत कठिन है। और दूसरी बात-क्रमबद्ध। आगे-पीछे पर्याय कभी होती नहीं। जिस समय जो होनेवाली है, वही होती है। क्रमबद्ध और यह। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। दो बात बहुत कठिन है, प्रभु! आहाहा! दो बात अन्दर से बैठे, उसकी दशा पलट जाए। आहा! क्रमबद्ध का निर्णय करने जाए.. सर्व द्रव्य में क्रमसर पर्याय होगी। आगे-पीछे होगी नहीं। शरीर की भी ऐसी और आत्मा की भी ऐसी। ऐसा निर्णय जब करने जाए, तब ज्ञायक पर दृष्टि जाती है। और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं, ऐसा निर्णय करने जाता है तो भी द्रव्य पर दृष्टि जाती है। आहाहा! ये दो सिद्धान्त बहुत कठिन है।

क्रमबद्ध। कोई भी द्रव्य की पर्याय क्रम से एक के बाद एक जो होनेवाली है वह। एक के बाद दूसरी कोई भी हो, ऐसा नहीं। जो होनेवाली है, वही होगी। क्रमसर धारा चलती है। प्रवचनसार में दृष्टान्त दिया है। ९० गाथा। माला में जहाँ मोती होती है, मोती। वह जिस स्थान में है, वहीं होता है। वहाँ से आगे-पीछे करने जाए तो हार टूट जाएगा। आहाहा! इसी तरह आत्मा और सर्व द्रव्य की धारावाही समय में जो पर्याय प्रवर्तती है, क्रमबद्ध—आगे-पीछे नहीं और उसका-क्रमबद्ध का निर्णय द्रव्य के आश्रय से होता है।

पर्याय का निर्णय द्रव्य के आश्रय से होता है। पर्याय के आश्रय से पर्याय का निर्णय नहीं होता। आहाहा!

गहराई में खटका लगा ही रहता है,... धर्मी बाहर में दिखते हैं, लेकिन अन्दर में आत्मा का (खटका) गहराई में लगा रहता है, वहाँ से हटते नहीं। आहाहा! बाहर में स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, चक्रवर्ती का राज, इन्द्र की इन्द्राणी, करोड़ों इन्द्राणी। (होती हैं)। आहाहा! परन्तु अन्दर के आनन्द के रस के समक्ष खटक-खटक, काम करते हैं परन्तु खटक आत्मा की रहा करती है। मैं तो आनन्द हूँ, मैं तो ज्ञान हूँ। मैं राग का कर्ता नहीं हूँ और राग का भोक्ता भी नहीं हूँ। आहाहा! मार्ग ऐसा है, प्रभु! अन्दर की प्रभुता पूरी अलग है। आहाहा!

अभी मुझे जो करना है वह बाकी रह जाता है... ऐसा विचार करे। अन्दर में अनुभव में जाना है, उसकी बात है न यहाँ? **ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है, इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता;...** भगवान आत्मा के सिवा सम्यग्दृष्टि को बाह्य में कोई चीज़ में सन्तोष नहीं होता। आहाहा! भक्ति करे तो भी शुभराग है, पंच महाव्रत हो तो वह शुभराग है, उसमें रस नहीं है। राग आता है, लेकिन रस नहीं है। आहाहा! **और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती,...** समकित नहीं है तो उसे अभी हाथ नहीं आयी और उसे यहाँ शुभ में उलझन हो जाए। शुभ में उलझन में आकर छोड़ने जाए, नहीं छूटे। शुष्क हो जाएगा। आहा..! **इसलिए उलझन तो होती है,...** उस ओर का प्रयत्न तो होता है। **परन्तु इधर-उधर न जाकर वह उलझन में से...** उलझन किसको कहते हैं? उसमें से निकल जाए। निकालना है, उसमें से मार्ग निकालना है। ३३ हुआ।

मुमुक्षु को प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है, परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाए। उसे सुख का वेदन चाहिए है, वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है, इसलिए उलझन होती है परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। जितना पुरुषार्थ उठाये, उतना वीर्य अन्दर काम करता है। आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है, व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता॥ ३४॥

३४। किसी ने लिखा है। **मुमुक्षु को प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है,..** कषाय ? उलझन का अर्थ क्या है ? थोड़ा कषायभाव आता है ? अस्थिर स्थिति ? अस्थिर स्थिति ? **परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाए।** आहाहा ! अन्तर में आनन्द में जाने को... अभी सम्यग्दृष्टि नहीं है, इसलिए राग आता है, कषाय भी होता है, लेकिन उलझन में नहीं आना, उलझना नहीं। उलझ जाएगा तो अन्दर जा नहीं सकेगा। आहाहा !

उसे सुख का वेदन चाहिए है... सर्व को सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का भाव है। **उसे सुख का वेदन चाहिए है...** आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन चाहिए। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पुर, सर्वांग नूर-ज्ञान का तेज, ऐसे भगवान का वेदन चाहिए। समकित पहले भी मुमुक्षु को यह होना चाहिए। आहाहा ! इसके सिवा कोई चीज़ रुचे नहीं, सुहाये नहीं। आहा.. ! **वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है,...** अन्दर अनुभव में जाता नहीं और बाहर में आना रुचता नहीं। **इसलिए उलझन होती है परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है।** थोड़ी उलझन होती है, उसको छोड़कर सूक्ष्म विकल्प आ जाता है, उस सूक्ष्म विकल्प को उलझन कहते हैं, उसमें से छूटकर अन्दर में चला जाता है। समकित प्राप्त करने की रीत और क्रम यह है कि जो अनन्त काल में एक समय भी मिला नहीं। आहाहा ! **इसलिए उलझन होती है... उसे सुख का वेदन चाहिए है, वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है,...** अन्दर में जा सकता नहीं और बाहर आना, अशुभ आदि में आना रुचता नहीं। **इसलिए उलझन होती है परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है।** विकल्प को छोड़कर। उलझन का अर्थ अपने यहाँ विकल्प है। विकल्प थोड़ा जो राग का अंश है, उसको छोड़कर निर्विकल्प आत्मा का सम्यग्दर्शन ढूँढ़ लेता है। आहाहा ! बहुत लोग पूछते हैं कि समकित कैसे होता है ? कैसे होता है ? ऐसे होता है। आहाहा !

जितना पुरुषार्थ उठाये, उतना वीर्य अन्दर काम करता है। जितना अन्दर पुरुषार्थ करे.. आहाहा ! पुरुषार्थ तो उसको कहते हैं, अन्तर्मुख में जितना वीर्य झुके, उसको पुरुषार्थ कहते हैं और अन्दर में झुके नहीं और जो शुभ आदि भाव हो, उसको तो क्लिव कहते हैं। संस्कृत में क्लिव (है)। क्लिव का अर्थ जयचन्द्र पण्डित ने किया है कि वह नपुंसक है। ऐसा अर्थ किया है। जयचन्द्र पण्डित है न ? उन्होंने ऐसा लिखा है। आहाहा !

स्वयं को शुभभाव में रुचता नहीं और अन्दर जा सकता नहीं। उसको अन्दर विकल्प की जाल में घुस जाता है। लेकिन उसे छोड़ देना। अन्दर में भगवान पूर्णानन्द का नाथ तल में विराजता है। पर्याय ऊपर तैरती है, पूरे शरीर में पर्याय ऊपर रहती है। यह पेट में आत्मा है न अन्दर? उसके प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय है। प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय है। सब पर्याय को अन्तर में झुकाना। आहाहा! यह क्रिया है। **पुरुषार्थ उठाये, उतना वीर्य अन्दर काम करता है।**

आत्मार्थी हठ नहीं करता... आहाहा! हठ नहीं करता। वह आ गया न? उत्सर्ग और अपवाद। उत्सर्ग और अपवादमार्ग। अन्दर रह नहीं सके तो शुभराग में आता है। हठ नहीं करे कि शुभराग क्यों आया? राग नहीं चाहिए, ऐसी हठ नहीं करता। और शुभराग आया, तो उसमें रहने का भाव न करे। आहाहा! पहले आ गया है, उत्सर्ग और अपवाद। प्रवचनसार की बात बहिन में आ गयी है। अन्तर में अनुभव हुआ, उसमें रह न सके तो आग्रह नहीं करना कि मैं इसी में रहूँ। शुभराग तो आता ही है। वह अपवाद है। अन्दर में रहना, वह उत्सर्ग है। अन्दर में रह न सके तो हठ न करना कि अन्दर ही रहूँ। शुभराग में आ जाएगा। और शुभराग में हठ नहीं करना कि शुभराग ही मुझे रखना है। उसकी भी हठ नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। जल्दबाजी में अन्दर कषाय होगा अज्ञानी को। अन्तर चैतन्यमूर्ति प्रभु अकषाय स्वभाव शान्त.. शान्त.. शान्त.. शान्ति के रस का कन्द हाथ आया नहीं, इसलिए जरा कषाय की वृत्ति-विकल्प उठता है। वहाँ हठ नहीं करना। **स्वभाव में हठ काम नहीं आती।** अन्तर स्वभाव में जाने में हठ काम नहीं करे। आहाहा! अन्तर में जाने के लिये सरलता से पुरुषार्थ अन्तर में झुकाने का प्रयत्न करना। राग से हटकर द्रव्य पर (जाने का) पुरुषार्थ करना। उस पर लक्ष्य करने का प्रयत्न करना। आहाहा!

मार्ग सहज है,... आहाहा! मार्ग तो सहज है। कोई राग की क्रिया या विकल्प की क्रिया से मार्ग आता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! सहज आता है। **व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता।** व्यर्थ में कषाय करे, शुभ और अशुभ, उससे कुछ हाथ आता नहीं आता। ३४ हुआ न?

जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरंग रुचि को नहीं पलटता, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा। मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है॥ ३६॥

३६। **जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है...** आहाहा! जानन-देखन जो उपयोग पर की ओर झुका है। अनादि से पर की ओर झुका है। भले दया, दान में हो, वह पर की ओर झुका है। उस **उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरंग रुचि को नहीं पलटता,...** क्या कहते हैं? रुचि को बदलता नहीं और अन्दर प्रयत्न करने जाता है। रुचि आत्मा की चाहिए। राग और पुण्य की रुचि छूट जानी चाहिए। किसी भी पहलू से राग की पुष्टि और रुचि नहीं होनी चाहिए। सब राग की रुचि छूट जाए। आहाहा! समझ में आया?

अन्तरंग रुचि को नहीं पलटता, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि को पलटे... रुचि अनुयायी वीर्य। जिस ओर पोसाता हो, उस ओर पुरुषार्थ काम करे। आहाहा! अन्तर की रुचि जमी तो पुरुषार्थ वहाँ काम करे, राग की रुचि जमी तो राग का पुरुषार्थ करे। रुचि अनुसार वीर्य लगता है। **उपयोग सहज ही पलट जाएगा।** रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा। रुचि बदल जाए तो उपयोग सहज अन्दर जाएगा। आहा..! सूक्ष्म बात है, भाई! **मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है।** प्राप्त करने की विधि का यह क्रम है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)